आई. टी. ओ. पुल

मुक्ता

आई. टी. ओ. पुल

कहानी

मुक्ता

आई. टी. ओ. पुल

अलसाई पसरी औरत का फूला पेट देखते ही सोमा चौंक ।झुग्गी-झोंपड़ियों की कतारें, उजड़ा सूखा मैदान। पंडारा रोड का यह रास्ता नहीं...

" किधर लिए जा रहे हो ?" सोमा का धैर्य चुक गया। " सुनाई नहीं दे रहा...मैं पूछ रही हूँ कहाँ जा रहे हो...मुझे पंडारा रोड जाना है। तुम ऑटोवालों की घुमाने की आदत है...मीटर बढ़ जाएगा। ज्यादा किराया वसूल करोगे...लेकिन मेरे साथ यह बेईमानी नहीं चलेगी। "

" किसने बेईमानी की है? बेईमान कहने का तुम्हें कोई हक नहीं है। " ऑटो-चालक की आँखों से आग बरस रही थी।

" हक कैसे नहीं है? एक तो चोरी ऊपर से सीनाजोरी। हम दिल्लीवाले हैं और अखबार वाले हैं...हमारे साथ यह सब नहीं चलेगा..." सोमा की नसें तनने लगीं।

" तुम झूठ बोल रही हो, तुम दिल्ली की नहीं हो। तुम हमारे देश की हो। " ऑटोचालक वे तेवर पिघलने लगे। " हम भी नए हैं...हमें रास्ता नहीं मालूम...हमने सोचा तुम्हें मालूम है...लेकिन शायद तुम्हें भी नहीं मालूम...चलो आगे पूछ लेते हैं... "

सोमा चुप था। उसने ऑटो-चालक का मुआयना किया। अधेड़ उम्र। नाटे कद का गठा शरीर। चेहरे रार अधपके बालों का झुरमुट। सूखे उजाड़ मैदान के बीच की घास सोमा के पैरों तले डंक मार रही थी। लिपस्टिक, कटे बाल और परफ्यूम के बीच उसका कस्बा कहाँ से पकड़ में आ गया? आँखों से या रेवेलॉन के तेज ब्रांज शेड के बीच की पतली सुरंग से निकलनेवाली आवाज से। वही आवाज जो उसे जमीन और आसमान से बेदखल करती रही है। न वह कस्बे की बन पाई है न महानगर की। अब तो यह आवाज उसके लिए भी अजनबी है। ऑटोवाले ने अचानक ही आज उसे बेनकाब कर दिया, ' तुम इस शहर की नहीं। ' अखबारवाली भी वह कहाँ रह गई है? इस जुमले का इस्तेमाल उसने धमकाने के लिए किया था। यह सच है कि उसका

अखबार से गहरा रिश्ता था। वह प्रतिबद्ध पत्रकार थी। लेकिन यह सब बीते समय की बातें हैं। कितना बड़ा छद्म वह जी रही है। प्रशांत के घुँघराले सीने में सिर छुपाने का मोह वह तोड़ नहीं पा रही। प्रशांत ऐसी धुरी बन चुका है जिसकी परिधि में वह लहूलुहान घूम रही है...घूमती जा रही है।

" स्टॉप इट सोमा। यह ' हम ' यहाँ दिल्ली में नहीं चलेगा। ' मैं ' कहो... कितना गँवार-सा लगता है ' हम '। इलेक्ट्रॉनिक मीडिया में तराशी हुई जुबान की जरूरत है। शब्दों को केवल बोलना नहीं है उन्हें सहलाना है, खेलना है उनसे..."

" प्रशांत, मुझसे नहीं होगा यह सब...मेरा मिशन पत्रकारिता है। महिलाओं, बच्चों के शोषण के विरुद्ध मैं लिखना चाहती हूँ। उनकी चुप्पी को ध्वनि देना चाहती हूँ...मैं जाऊँगी पूछूँगी सत्ताधारियों से-कब तक चलेगा यह सब...कब तक ?"

" गुड आइडिया, तुम लिखो, नेताओं से मिलो। बहुत कम लोगों तक पहुँचती है तुम्हारी कलम लेकिन तुम्हारी आवाज पूरे देश तक पहुँचेगी। मैं पहुँचाऊँगा, भरोसा है न मुझ पर!"

प्रशांत के सीने से लगकर सोमा आजादी के बिंब आईने में निहार रही थी। बेंत के फ्रेम में जड़ा यह शीशा सोमा के कस्बे का था। प्रशांत जब भी आता आईने के सामने कई कोण से खड़े होकर अपनी सूरत निहारता। आईना उसकी प्यास थी जिसे वह घूँट-घूँट पीता। सोमा के लिए आईना आकाश का वह टुकड़ा था जिसमें समाकर वह परी बन जाती। आजाद, उन्मुक्त उड़ानें भरती। उसके सामने होती ऐसी धरती जहाँ चीखें नहीं, कराहें नहीं, बंजर भूमि नहीं, केवल दूर-दूर तक फैली पीली सरसों है।

अकबरपुर के एक छोटे से साप्ताहिक पत्र से सोमा ने लिखना शुरू किया था। पिता की बैंक में अच्छी नौकरी थी। छोटा भाई पड़ रहा था। माँ-पिताजी दोनों की इच्छा थी सोमा आगे बढे। सोमा के लेखों की चर्चा शे कस्बे में थीं। माता-पिता और साप्ताहिक पत्र के संपादक कुलभूषण जी के प्रोत्साहन का परिणाम था कि सोमा दिल्ली आ गई। कुलभूषणजी की अच्छी-खासी मित्र-मंडली दिल्ली में थी। सोमा को काम मिलने में आसानी हुई। पत्रकारिता के क्षेत्र में उसकी अपनी पहचान बनने लगी। बंगाली मार्केट